'वेद' शब्दका तात्पर्यार्थ क्या है ?

(शास्त्रार्थ-महारथी (वैकुण्ठवासी) पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

'वेद' शब्दमय ब्रह्मका मूर्तस्वरूप है, इसलिये सभी शास्त्रोंमें 'वेद' शब्दका अपर पर्याय 'ब्रह्म' प्रसिद्ध है। वेदका जो विधि-प्रधान भाग है, वह तो 'ब्राह्मण' नाम्ना ही सर्वत्र व्यवहृत है। '**ब्रह्मण इदं ब्राह्मणम्**' इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थके कारण ही उक्त भागकी 'ब्राह्मण'-संज्ञाका स्वारस्य सिद्ध होता है।

'वेद' शब्द '**विद सत्तायाम्**', '**विद ज्ञाने**', '**विद विचारणे**' और '**विद्लृ लाभे**'—इन चार धातुओंसे निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—जिसकी सदैव सत्ता हो, जो अपूर्व ज्ञानप्रद हो, जो ऐहिकामुष्मिक उभयविध विचारोंका कोश हो और जो लौकिक और लोकोत्तर लाभप्रद हो, ऐसे ग्रन्थको 'वेद' कहते हैं।

वेदोंमें सत्ता, ज्ञान, विचार और लाभ—ये चारों गुण विद्यमान हैं। हम क्रमशः इन चारों गुणोंपर विशेष विचार उपस्थित करते हैं—

सत्ता—

ईश्वरवादी सभी सम्प्रदायोंमें ईश्वर अनादि और अनन्त परिगृहीत है। 'वेद' भगवान्‌की वाणी है, अतः वह भी अनादि एवं अनन्त है। स्मृति-वचन है—

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।

अर्थात् वेद स्वयम्भू ब्रह्माकी वह वाणी है, जिसका न कोई आदि है और न अन्त। अतएव वह नित्य है। ब्रह्मा भी वेदवाणीके निर्माता नहीं, अपितु यथोपदिष्ट उत्सर्ग—प्रदान करनेके कारण उत्स्रष्टा ही है। इस प्रकार वेदोंकी सत्ता त्रिकालाबाधित है।

कदाचित् कोई कुतार्किक 'वाणी' शब्दको सुनकर आशंका करे कि लोकमें तो वाणी त्रिकालाबाधित नहीं होती। जाग्रत्-अवस्थामें ही वाणीका व्यापार प्रत्यक्ष दृष्ट है। स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्थामें तो वाणीके व्यापारकी कथमपि सम्भावना नहीं की जा सकती। अतः आस्तिकोंके कथित भगवान्‌के भी शयनकालमें वाणीका अवरोध युक्तिसंगत है, अतः उसे सदा अनवरुद्ध सत्ता-सम्पन्न कैसे कहा जा सकता है ? यद्यपि यह शंका कुतर्कपर आश्रित है; क्योंकि संसारमें कोई भी दृष्टान्त सर्वांशमें परिगृहीत नहीं हुआ करता, किंतु सभी उपमाएँ एक सीमातक उपमेय वस्तुके गुण-दोषोंकी परिचायक हुआ करती हैं। मुखको चन्द्रके समान कहनेका चन्द्रगत आह्लादकतादि गुणोंका ही मुखमें आरोप करना हो सकता है न कि तद्गत शशक-चिह्न, किंवा क्षीणत्व-दोषका उद्घाटन करना। ठीक इसी प्रकार वेदको भगवान्‌की वाणी कहनेका तात्पर्य यही है कि यावत् शब्द-व्यवहार एकमात्र वेद-वाणी-निस्यूत शब्द-राशि है; क्योंकि वह अपौरुषेय है, अतः किसी पुरुष-विशेषकी वाणीसे उसका सम्बन्ध स्वीकृत नहीं, इसलिये आपाततः वेदभगवान्‌का ही वैभव हो सकता है। तथापि कुतार्किकोंको शंका-उद्घाटनका अवसर ही प्राप्त न हो, एतावता अन्यत्र वेदको भगवद्वाणी न कहकर उसे भगवान्‌का निःश्वास कहा गया है—

(क) अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। (बृहदारण्यक० २। ४। १०)

(ख) यस्य निश्वसितं वेदाः।

(सायणीय भाष्य मङ्गलाचरण)

अर्थात्—(क) इस महाभूत श्रीमन्नारायणभगवान्‌के ये श्वास ही हैं। जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्वाङ्गिरस—अथर्ववेद हैं।

(ख) वेद जिस भगवान्‌के निःश्वासोच्छ्वास हैं, वे प्रभु वन्दनीय हैं।

कहना न होगा कि उक्त प्रमाणोंमें वेदोंको भगवान्‌का श्वासोच्छ्वास कहनेका यह अभिप्राय है कि श्वास प्रयत्न-साध्य वस्तु नहीं, किंतु निसर्गजन्य है तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्थामें भी यावज्जीवन वह विद्यमान रहता है, एतावता यह सुप्रसिद्ध है कि वेद भी कोई कृत्रिम वस्तु नहीं,अपितु भगवान्‌का सहज व्यापार है। संसार भले ही सम्भव और विनाशशील हो, परंतु वेदोंकी सत्ता आदि सृष्टिसे पूर्व भी थी और प्रलयान्तरमें भी वह अबाधरूपमें अक्षुण्ण बनी रहेगी। जैसे श्रीमन्नारायणभगवान्

अनादि, अनन्त और अविपरिणामी हैं, ठीक इसी प्रकार वेद भी अनादि, अनन्त और अविपरिणामी हैं। इस प्रकार सिद्ध है कि '**विद सत्तायाम्**' धातुसे निष्पन्न 'वेद' शब्द त्रिकालाबाधित सत्तासम्पन्न है।

ज्ञान—

वेद जहाँ प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमानकी सीमापर्यन्त सीमित लौकिक ज्ञानकी अक्षय निधि हैं, वहीं प्रत्यक्षानुमानोपमानादिसे सर्वथा और सर्वदा अज्ञेय, अतीन्द्रिय, अवाङ्मनसगोचर लोकोत्तर ज्ञानके तो एकमात्र वे ही अन्धेकी लकड़ीके समान आधारभूत हैं। वस्तुतः लौकिक ज्ञान वेदोंका मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं है। तादृश वर्णन तो वैदिकोंके शब्दोंमें केवल प्रत्यक्षानुवादमात्र है। कुछ लोग कहते हैं कि '**अग्निर्हिमस्य भेषजम्**'—यह बात वेदके बिना भी वज्रमूर्खतक स्वानुभवसे जानते हैं, फिर वेदमें ऐसी छिछली बातोंकी क्या जरूरत थी? परंतु आक्षेप्ताओंको मालूम होना चाहिये कि वेदका यह प्रत्यक्षानुवाद भी उस कोटिका साहित्य है, जो कि आजके कथित भौतिक विज्ञानवादियोंकी समस्त उछल-कूदकी पराकाष्ठाके परिणामोंसे सदैव एक कदम आगे रहता है। शंकावादीकी उदाहृत श्रुतिका केवल यही अर्थ नहीं है कि 'अग्नि शीतकी औषधि है' अर्थात् आग तापनेसे पाला दूर हो जाता है,अपितु वेदके इन शब्दोंमें यह उच्च कोटिका विज्ञान भी गर्भित है कि हिमानी प्रदेशमें उत्पन्न होनेवाली जड़ी-बूटियाँ अतीव उष्ण होती हैं। शिलाजीत, केशर, संजीवनी और कस्तूरी आदि इस तथ्यके निदर्शन हैं अथवा बर्फ बनानेका नुस्खा अग्नि ही है अर्थात् इतनी डिग्री उष्णता पहुँचानेपर तरल राशि बर्फरूपमें घनीभावको प्राप्त हो जाती है। कहना न होगा कि वर्तमान भौतिक विज्ञानवादी वर्षों अनुसंधान करनेके उपरान्त एक मुद्दतमें वेदके उपर्युक्त मन्त्रांशद्वारा प्रतिपादित हिम-विज्ञानको समझ पाये हैं। इसी प्रकार वेद-प्रतिपादित अश्वत्थ-विज्ञान, शङ्खध्वनिसे रोग-कीटाणु-विनाश-विज्ञान, श्रीजगदीशचन्द्र वसु और सी० बी० रमण आदि भारतीय विज्ञानवेत्ताओंके चिरकालीन अनुसंधानोंके उपरान्त अभारतीय वैज्ञानिकोंतक अंशतः पहुँच गया है। इसी प्रकार '**हिमवतः प्रस्रवन्ती··· हृद्रोगभेषजम्**' आदि वेद-प्रतिपादित गङ्गाजलके हृदय-रोगोंकी अचूक औषधि होनेकी बात अभीतक अनुसंधान-कोटिमें ही लटक रही है और वेदोक्त स्पर्श-विज्ञानकी ओर तो अभी भौतिक विज्ञानवादी उन्मुख नहीं हो पाये हैं।

'**अग्नीषोमात्मकं जगत्**' इस वैदिक घोषणाका तथ्य समझनेमें अभी वैज्ञानिकोंको शताब्दियाँ लगेंगी। परमाणु-विज्ञान, विज्ञानकी चरम सीमा समझी जाती है, परंतु वस्तुतः वह विज्ञानकी 'इति' नहीं, अपितु 'अथ' है। कथित 'नाईट्रोन' और 'प्रोटोन' नामक परमाणुके विश्लिष्ट अन्तिम दोनों अंश वेदोक्त अग्नि और सोम-तत्त्वके ही स्थूलतम प्रतिनिधि हैं। जिस तत्त्वांशको अन्तिम समझकर आजका भौतिक विज्ञानवादी केवल अनिर्वचनीय शक्तिपुञ्ज (एनर्जी)-मात्र कहनेको विवश है और तत्संश्लिष्ट 'अपर' अंशको अच्छेद्य सह-अस्तित्वशाली आवरण बताता है, वास्तवमें वे दोनों अग्नि और सोमके ही स्थूलतम अत्यणु हैं। यह परमाणु-विज्ञानका चरम बिन्दु नहीं किंतु प्रवेशद्वारमात्र है। अभी तो विपञ्चीकृतभूत तन्मात्राएँ, अहंकार और महान्—इन द्वारोंकी लम्बी मंजिल तय करनी पड़ेगी, तब कभी 'अव्यक्त' तत्त्वतक पहुँच हो पायेगी। उस समय साम्प्रतिक भौतिक विज्ञानवादियोंद्वारा कथित एनर्जी और आवरण नामक तत्त्वद्वयात्मक परमाणु पुरुष और प्रकृतिके ऐक्यभूत अर्धनारीश्वरकी संज्ञाको धारण कर सकेंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि वेदोंका प्रमुख विषय भौतिक विज्ञान भी वेदोंमें इतनी उच्च कोटिका वर्णित है कि जिसकी तहतक पहुँचनेमें अनुसंधायकोंको अभी कई सहस्राब्दियाँ लग सकती हैं।हमने प्रसंगवश कतिपय पंक्तियाँ इस विषयपर इसलिये लिख छोड़ी हैं कि जिनसे वर्तमान भौतिक विज्ञानकी चकाचौंधमें चौंधियायी हुई भारतीय आँखोंकी भी साथ-साथ कुछ चिकित्सा हो सके। अब हम वेदोंके मुख्य विषयकी चर्चा करते हैं। स्मृतिकारोंका कहना हैं—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

अर्थात् प्रत्यक्षानुमान और उपमान आदि साधनोंद्वारा जो उपाय नहीं जाना जा सके, वह उपाय वेदसे जाना जा सकता है, यही वेदका वेदत्व है।

मन क्या है? बुद्धि क्या है? स्वप्न और सुषुप्तिकी अनुभूतियाँ किमाधारभूत हैं? जीवन-मरण क्या है? मृत्युके पश्चात् क्या कुछ होता है? इत्यादि मानव-प्रश्नोंको मानव-बुद्धि-बलात् सुलझानेका असफल प्रयत्न किया जायगा तो हो सकता है कि अनुसंधायक सनकी, अर्धविक्षिप्त, किंवा मस्तिष्ककी धमनी फट जानेसे मृत्युका ग्रास ही न बन जाय। इसलिये अनुभवी तत्त्वदर्शियोंकी खुली घोषणा है कि—

अतीन्द्रियाश्च ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।

इन्द्रियातीत भावोंको तर्कसे समझनेका प्रयास नहीं करना चाहिये।

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिन लोकोत्तर परोक्ष-विषयोंमें मानव-बुद्धि उछल-कूद मचाकर कुण्ठित; किंवा पंगु हो जाय, उन विषयोंके परिज्ञानके लिये एकमात्र वेद ही हमारा मार्गदर्शक हो सकता है। इसलिये पाणिनीय महाभाष्यकारके शब्दोंमें भारतीय ऋषियोंका यह गौरवपूर्ण उद्घोष आज भी दिग्दिगन्तोंमें प्रतिध्वनित है— '**शब्दप्रामाणिका वयम्**' अर्थात् हम वेद-प्रमाणको सर्वोपरि मानते हैं। इस प्रकार सिद्ध है कि—'**विद ज्ञाने**' धातुसे निष्पन्न होनेवाला 'वेद' शब्द धात्वर्थके अनुसार लौकिक और पारलौकिक उभयविध ज्ञानका कोश है।

विचार—

'वेद' शब्दका अन्यतम अर्थ विचार भी है। तदनुसार लौकिक या पारलौकिक कोई भी नया बेजोड़ विचार सम्भव नहीं हो सकता, जो कि वेदमें प्रथमतः न किया गया हो! यह ठीक है कि दुर्भाग्यवश आज राजाश्रयके बिना वे सुलझे-सुलझाये अकाट्य सिद्धान्त तबतक लोगोंकी दृष्टिसे ओझल ही रहते हैं, जबतक कि अँधेरेमें चाँदमारी करनेवाले वर्षों माथापच्ची करनेके बाद किसी सिद्धान्ताभासकी दुम पकड़कर एतावता अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेते और उसपर आचरण करके पदे-पदे विपत्तियाँ आनेपर अपने उस मन्तव्यकी केंचुली बदलते-बदलते 'मघवा मूल विडौजा टीका' को चरितार्थ नहीं कर डालते। यह एक अपरिहार्य सत्य है कि मनुष्य चाहे कितना ही बड़ा बुद्धिमान् क्यों न हो, तथापि वह मानव होनेके कारण 'अल्पज्ञ' ही रहेगा। सर्वज्ञ तो एकमात्र श्रीमन्नारायणभगवान् ही हैं। अतः मानव-विचार सर्वांशमें त्रुटिहीन नहीं हो सकता। एक मनुष्यकी कौन कहे, सैकड़ों चुने हुए बुद्धिमानोंद्वारा बड़े ऊहापोह और बहस-मुबाहसेके बाद बनाये गये कानून कुछ दिनोंके बाद ही खोखले मालूम पड़ने लगते हैं। वही प्रस्तोता अनुमोदक तथा समर्थक अपने पूर्व-निश्चयको बदलनेके लिये बाध्य हो जाते हैं। भारतकी ही संसदमें अन्यून नब्बे करोड़ जनताद्वारा निर्वाचित सवा पाँच सौ सदस्य एक दिन एक विधान बनाते हैं और कुछ दिनोंके बाद स्वयं उसमें संशोधनके लिये बाध्य होते हैं। यह मनुष्यकी सहज अल्पज्ञताका ही निदर्शन है। इसलिये सर्वज्ञ भगवान्‌की वाणी वेद ही '**विद विचारणे**' धातुसे निष्पन्न होनेके कारण सही विचारोंका खजाना है।

लाभ—

शास्त्रोंमें समस्त लौकिक लाभोंका संग्राहक शब्द 'अभ्युदय' नियत किया गया है और सम्पूर्ण पारलौकिक लाभोंका संग्राहक शब्द 'निःश्रेयस' शब्द नियत किया गया है। उक्त दोनों प्रकारके लाभ जिनके द्वारा सुतरां प्राप्त हो सकें, उसी तत्त्वका पारिभाषिक नाम धर्म है। वेद धर्मका प्रतिपादक है। अतः यह उभयविध लाभोंका जनक है। वेदाज्ञाओंका पालन करनेवाले व्यक्तिको 'योगक्षेमात्मक' सर्वविध अभ्युदय प्राप्त होता है और परलोकमें वह श्रीमन्नारायणभगवान्‌के सांनिध्यसे लाभान्वित होता है। शास्त्रमें साधकके लिये पारलौकिक सद्गतिको ही वस्तुतः परम लाभ स्वीकार किया गया है, लौकिक सुख-समृद्धिको तो अनायास अवश्य ही प्राप्त होनेवाली वस्तु बतलाया गया है, जैसे आम्रवनमें पहुँचनेपर यात्राका वास्तविक लाभ तो सुमधुर आम्रफल-प्राप्ति ही है, परंतु घर्मतापापनोदिनी शीतल छाया, श्रुति-सुलभ कोकिला-रावश्रवण और घ्राणतर्पक विशुद्ध वायु-संस्पर्श आदि भोग तो उसे अयाचित ही सुलभ हो जायँगे। एतावता यह सिद्ध है कि '**विद्लृ लाभे**' धातुसे निष्पन्न 'वेद' शब्द अपने मूल धात्वर्थके अनुसार ऐहिक और आमुष्मिक उभयविध लाभोंका सर्वोपरि जनक है।

अतः जो त्रिकालाबाधित सत्तासम्पन्न हो, परोक्ष ज्ञानका निधान हो, सर्वविध विचारोंका भण्डार हो और लोक तथा परलोकके लाभोंसे भरपूर हो उसे 'वेद' कहते हैं। यही वेद शब्दका संक्षिप्त अर्थ है।